कस्तूरी

वह सलोनी सी मृग-शाविका
कुछ अपने ही में मग्न हो
खेलती, इतराती, इठलाती
मानों पूरी दुनिया उसमें स्वयं हो!

माँ-पिता पर करते नहीं काम:
भक्षण, आत्मरक्षा, भ्रमण, आराम,
आत्मजा की देख-भाल? नहीं
पूरे समय कुछ और ख्याल!

दोनों मृग कुछ भ्रमित हो
इस ओट से उस ओट में
उन्मत्त, व्यथित मन को लिए
निकले हों ज्यों दिग्भ्रमण के लिए

चलती रहती वह शाविका
कुछ अपने ही में मग्न रह
भटकते रहते उसके माँ-पिता
करते रहते सब कष्ट सह

कुछ मास बड़ी हुई शाविका
समझी- क्या इसी तरह भटकते रहना?
प्रश्न करके देखूं तो ज़रा -
उत्तर उन्हें कह पड़ेगा ही कहना

पिताश्री! हमें हुए कुछ मास
क्यों नहीं ठहरे एक स्थान पर?
ऐसी किस खोज की आस
दो दिन न रुके, हरे मैदान पर?

सुन सुंदरि! तेरा प्रश्न जटिल
हमको आती एक सुगंध, अज्ञात
पता नहीं क्यों असहाय, शिथिल
हम खोजते उसे, उठ हर प्रभात!

उत्तर से न संतोष हुआ उसे
सोचा - होगा इनका कोई पागलपना
खैर! मेरा तो कुछ नहीं जाता
मेरा धर्म तो कूदना, खेलना!

नेपथ्य से बहेलिया उठ पड़ा बोल
हन्त! यह कैसा है अज्ञान?
तेरे अंदर ही 'कस्तूरी' का स्रोत
उठ! जाग! कर सत्य का भान!